समावेशन, विशेष आवश्यकताएँ और चिन्तनशील शिक्षक

अनुराधा नायडू

परिचय

कक्षा में प्रत्येक बच्चे की खुशहाली का समर्थन करने का पहला उत्तरदायित्व शिक्षक का है, फिर चाहे वह भावनात्मक खुशहाली हो या स्वास्थ्य और पुनर्वासन से सम्बन्धित। आधुनिक कक्षा में 'विविधता' शब्द के अन्तर्गत अनेक प्रकार के बच्चे आ जाते हैं, जैसे- विशेष आवश्यकताओं वाले और विकलांग बच्चे, प्रवासी बच्चे, ग़रीबी में जीवन-यापन करने वाले बच्चे, एकल माता-पिता के बच्चे, गोद लिए गए बच्चे, गम्भीर रूप से बीमार माता-पिता के बच्चे और ऐसे कई अन्य बच्चे जिनकी ज़रूरतें बहुत अलग प्रकार की होती हैं तथा उनका विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। जब हम शिक्षकों की सेवापूर्व तैयारी की बात करते हैं तो शिक्षक-प्रशिक्षण में उनकी बहुआयामी भूमिकाओं को शामिल करना चाहिए ताकि वे समावेशन के लिए तैयार हो सकें।

समावेशन और विविधता

यूनेस्को के अनुसार, समावेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे शिक्षार्थियों की उपस्थिति, भागीदारी और उपलब्धि को सीमित करने वाले अवरोधों को दूर करने में मदद मिलती है। जिन शिक्षार्थियों की बहिष्कृत होने की सम्भावना सबसे अधिक है, वे हैं– ग़रीब घरों के बच्चे, विशिष्ट धार्मिक, सांस्कृतिक या जातीय समूहों के बच्चे, स्वदेशी समुदायों के बच्चे या विशेष आवश्यकताओं वाले और विकलांग बच्चे (यूनेस्को)। ऐसे अनेक अवरोध हैं जो भागीदारी को सीमित करते हैं- जैसे शारीरिक, तकनीकी, वित्तीय या अभिवृत्तिक या फिर बच्चों को स्कूल में रख पाने में स्कूल की असमर्थता।

इंस्कोउ और बूथ भी कहते हैं कि समावेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मानव विविधता की सराहना के लिए मज़बूत प्रतिबद्धता होती है। उनके अनुसार जब स्कूल अपने विद्यार्थियों की विविधता की सराहना करते हैं तो वे बच्चों द्वारा अपने साथ लाए मूल्यों को पहचानना शुरू करते हैं। विद्यार्थियों की विविधता को महत्व देने का मतलब यह होगा कि स्कूल सक्रिय रूप से विद्यार्थियों को एक साथ सीखने और शिक्षार्थियों के मिश्रित समूहों में सहयोग करने में सक्षम बनाते हैं। समावेशन की प्रक्रिया के तहत स्कूल द्वारा सभी विद्यार्थियों को अपने समुदायों में शामिल करके इस विविधता को बढ़ाना और ऐसे सभी प्रकार के चयन और बहिष्करण को दरकिनार करना आ जाता है जो भेदभाव करते हैं (इंस्कोउ, बूथ एवं डाइसन, 2006)।

'समावेशी शिक्षा' शब्द हाल ही में लोकप्रिय हुआ है। आमतौर पर यह शब्द नियमित स्कूलों में विशेष आवश्यकताओं वाली शिक्षा से जुड़ा हुआ है। यह इस बोध से विकसित हुआ है कि समान अवसरों और अधिकारों के लिए विकसित हो रहे विकलांगता आन्दोलन के समक्ष पृथक्कृत शिक्षा अप्रासंगिक थी।

इसके साथ ही स्कूलों के अनुकूलन की माँग उभरी है और इससे शिक्षक-शिक्षा की अपेक्षाएँ भी बढ़ी हैं। आज समावेशी शिक्षा की व्यापक परिभाषा में वे सभी बच्चे शामिल हैं जिन्हें ऐतिहासिक रूप से विविध सांस्कृतिक, आर्थिक और जातीय पृष्ठभूमि के आधार पर हाशिए पर रखा गया है; अब यह बात केवल क्षमता के बारे में नहीं रही।

सेवापूर्व शिक्षक-शिक्षा का पुन:अवधारण (re-conceptualised) किया जा सकता है ताकि शिक्षक समावेशी कक्षा में आत्मविश्वास से कार्य कर सकें। एक सुस्पष्ट दृष्टिकोण के साथ, यह तैयारी ऐसी होनी चाहिए जो प्रशिक्षु को आत्म-चिन्तन का अभ्यास करने और अपनी प्रभावशीलता में आत्म-प्रभावकारिता या विश्वास की भावना विकसित करने के अवसर प्रदान करे। विकलांग बच्चों और उनके परिवारों सहित विविध पृष्ठभूमि के बच्चों के साथ बातचीत करने के अवसर निश्चित रूप से शिक्षकों के दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलते हैं और वे बाल कारकों और अपनी स्वयं की विश्वास प्रणालियों में अन्य अवरोधों पर विचार कर पाते हैं।

नवाचार को शिक्षक-शिक्षा के केन्द्र में होना चाहिए जबकि विभिन्न क्षेत्रों में विकलांगता आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले लोगों, जैसे 'स्व-अधिवक्ताओं', के साथ बातचीत आज की शिक्षा में वास्तविक चुनौतियों को जीवन्त करती है और इस संवाद के दूरगामी सकारात्मक प्रभाव अवश्य होते हैं।

हाल के दशकों में कई ऐसे आदर्श एवं अनुकरणीय विकलांग व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने समावेशी समाज के लिए बहुत कार्य किया है और वे इस क्षेत्र में परिवर्तन लाने तथा इसका नेतृत्व करने में सफल रहे हैं। विकलांगता

अधिकार के अधिवक्ता मुख्यधारा में इसकी समझ बनाने के प्रयासों का निरन्तर प्रदर्शन करते रहते हैं। ढाई दशक तक **जावेद आबिदी** ने विकलांगता अधिकार आन्दोलन का नेतृत्व किया; उनके अथक अभियान के कारण एक नया विकलांगता अधिकार क़ानून पारित किया गया, जिसका नाम है, विकलांगजन अधिकार अधिनियम (2016)। विकलांगता सम्बन्धी एक अन्य उल्लेखनीय स्व-अधिवक्ता हैं **अंजलि अग्रवाल,** जिन्होंने भारत सरकार के साथ अभिगम्य वातावरण के पक्ष-समर्थन पर अभियान का लम्बे समय तक नेतृत्व किया। अभी हाल ही में **स्मिता सदाशिवन** ने भारत के चुनाव आयोग के साथ अभिगम्य चुनावों पर और यह सुनिश्चित करने के लिए काम किया है कि विकलांगता वाले व्यक्तियों के वोट भी गिने जाएँ। एक ऑनलाइन समाचार पत्र, 'कनेक्ट स्पेशल' प्रकाशित करने वाली **भावना बोट्टा** भी हैं, जो विकलांगता के पक्ष-समर्थन सम्बन्धी मुद्दों में रुचि रखने वालों के लिए नवीनतम विचारों का प्रसार करती हैं।

इन अनुकरणीय लोगों की सफलता की कहानियों से केवल सेवापूर्व शिक्षक ही नहीं, बल्कि सभी शिक्षक बहुत कुछ सीख सकते हैं। शिक्षा की व्यापक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, क्या सेवापूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण को विशेष आवश्यकताओं वाले लोगों के जीवन के अनुभवों से समृद्ध किया जा सकता है?

इक्कीसवीं सदी में आत्म-चिन्तन और शिक्षण

जब कोई सोचने के बारे में सोचता है तो उसकी अपनी सोचने की प्रक्रिया के बारे में जागरूकता होती है, न कि केवल विचारों के बारे में। देकार्त का प्रसिद्ध उद्धरण, 'मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ', यह दर्शाता है कि उन्होंने अपनी सोच को अपने अस्तित्व के प्रमाण के रूप में लिया । इस तरह की चिन्तनशील सोच स्वयं की अवधारणा के लिए और हमें मानव बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। क्या विचार के इस अनिवार्य मानवीय पहलू को कक्षा में वास्तविक रूप से उपयोग में लाया जा सकता है? कक्षा में विभिन्न प्रकार के विद्यार्थी होते हैं, इस मिश्रण को देखते हुए शिक्षकों को अपनी स्थिति पर अवसर और सम्भावना से परे जाकर चिन्तन करना चाहिए।

आज, शिक्षण-अभ्यास को कक्षा के अधिगम के रूप में और शिक्षक को ज्ञान के वाहक के रूप में मानने के विचार को सेल फ़ोन और इंटरनेट प्रौद्योगिकी के व्यापक उपयोग द्वारा चुनौती दी गई है। हालत तो यह है कि छोटे से छोटे नन्हे-मुन्ने बच्चे भी स्मार्टफ़ोन चालू कर सकते हैं और यूट्यूब पर लॉग ऑन करके अपना पसन्दीदा वीडियो देख सकते हैं । जैसे-जैसे विद्यार्थी इंटरनेट से जानकारी प्राप्त करने में पारंगत होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे शिक्षकों ने *विद्यार्थी केन्द्रित फ़्लिप क्लास* की बात करनी शुरू कर दी है, जिसमें घर पर ही डिजिटल संसाधनों से सीखी गई जानकारी हासिल की जाती है। ये प्रवृत्तियाँ हमें एक बदलती दुनिया दिखाती हैं जहाँ शिक्षार्थी की विविधता आदर्श है।

क्या शिक्षक आत्म-चिन्तन इस दिशा में आगे बढ़ने का तरीक़ा हो सकता है? 1990 के दशक में अपनी कक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान में लगे शिक्षकों के साथ काम करने से पता चला कि अपनी भूमिका के बारे में विस्तृत समझ विकसित करने के लिए शिक्षकों को ऐसे आत्म-आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता थी, जिसमें अविरत चिन्तन और आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया शामिल हो। 1980 के दशक की शुरुआत में ही आइज़नर ने बताया कि अध्यापन के बारे में ज्ञान की रचना करने में शिक्षकों की एक अद्वितीय और केन्द्रीय भूमिका होती है (आइज़नर, 1985)। ज्ञान-सृजन में आत्म-चिन्तन की केन्द्रीय भूमिका में क्रियाओं में चिन्तन और क्रियाओं पर चिन्तन दोनों शामिल हैं । इनमें से पहला कार्य करने के दौरान सोच और क्रियाशीलता के सहज तरीक़ों पर चिन्तन है संक्षेप में, चिन्तन बेहतर क्रियाओं की ओर ले जाता है (शॉन, 1983)।

चिन्तनशील शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शिक्षक अपने पाठ, विधियों और परिणामों का विश्लेषण करते हैं और इससे प्राप्त अन्तर्दृष्टि का उपयोग शिक्षार्थियों के अनुभव को बढ़ाने वाले अभ्यास को विकसित करने के लिए करते हैं। हॉबसन इस प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहते हैं, 'शिक्षक की अपनी यात्रा की कहानी'; दूसरे शब्दों में, शिक्षक के रूप में अपने जीवन के बारे में एक अनुभवात्मक अन्तर्दृष्टि (बर्नफर्ड, फिशर और हॉबसन 2001)। इस प्रकार, एक शिक्षक की आत्म-चिन्तन की प्रक्रिया चक्रीय और पुनरावर्ती होती है, जहाँ वे गम्भीर रूप से स्वयं की जाँच करते हैं और बार-बार कार्य करते हैं।

समावेशन और चिन्तनशील शिक्षक

एक समावेशी कक्षा में प्रत्येक चिन्तनशील शिक्षक अधिगम का सुगमकर्ता, पुनर्वासन परामर्शदाता, जीवन-प्रशिक्षक और प्रेरक होता है। एक सन्दर्भ बिन्दु के रूप में लगातार केन्द्र में रहने के कारण एक शिक्षक, जो एक समावेशी अभ्यासी है, को उच्च स्तर की प्रामाणिकता बनाए रखनी होती है। वह न केवल एक ऐसा रोल मॉडल है जो विद्यार्थियों के विकास का मार्गदर्शन करता है, बल्कि वह समावेशन के साथ अधिगम के सुगमीकरण के लिए भी एक नैतिक ज़िम्मेदारी साझा करता है।

यहाँ बच्चों की सफलता की कुछ कहानियाँ दी गई हैं जो भारत के एक सामान्य शहरी स्कूल में देखी गई विविधता

का प्रतिनिधित्व करती हैं। वास्तविक जीवन की इन सभी कहानियों में बच्चों को अपने शिक्षकों से प्राप्त उच्च स्तरीय स्वीकरण के बारे में तो चर्चा है ही, साथ ही यह भी बताया गया है कि उनके माता-पिता ने अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए किस प्रकार का साहस प्रदर्शित किया है ।

छह साल का सरोज एक नेपाली प्रवासी मज़दूर का बेटा है। वह अभी-अभी एक सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल में यूकेजी में दाख़िल हुआ है, जहाँ उसे अंग्रेज़ी, तमिल और हिन्दी पढ़ना-लिखना सिखाया जा रहा है । उसे प्रवासी मज़दूरों के बच्चों वाली एक विशिष्ट समस्या है - इनमें से कोई भी भाषा उसके घर पर नहीं बोली जाती है, क्योंकि उसकी मातृभाषा नेपाली है । वह अपने शिक्षक को पसन्द करता है और जब वह उनका नाम लेता है तो उसके चेहरे पर एक उजली मुस्कान तैरती है।

राम और अर्जुन चार साल के जुड़वाँ बच्चे हैं। उनके माता-पिता ने उन्हें गोद लिया था। दोनों एक निजी स्कूल में पढ़ते हैं, जहाँ उन्हें अलग-अलग सेक्शन में रखा गया है। उनके माता-पिता दोनों काम करते हैं। हालाँकि ये बच्चे एक बड़े व सुरक्षित परिवार से जुड़े हुए हैं लेकिन उनकी देखभाल करने वाले लगातार बदलते रहते हैं। वे अपने माता-पिता के साथ लगाव और जुड़ने की समस्याओं से जूझते रहते हैं। ऐसे में शिक्षक उन्हें स्थायित्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिसकी उन्हें बहुत आवश्यकता है।

सात साल की कीर्तना को जन्म से ही प्रमस्तिष्क पक्षाघात (सेरब्रल पॉल्ज़ी) की समस्या है। जैसे ही उसने सहारा लेकर चलना शुरू किया, उसकी माँ ने उसे पहली कक्षा में भर्ती करा दिया। हालाँकि वह स्पष्ट रूप से बात नहीं कर पाती लेकिन इस बात ने उसे कक्षा की गतिविधियों में भाग लेने से नहीं रोका। अपने शिक्षक के प्रोत्साहन के साथ वह सभी पाठ्येतर गतिविधियों में भाग लेने लगी जैसे कि कला, नाटक व नृत्य। स्कूल के वार्षिकोत्सव कार्यक्रम के दौरान उसने मंच पर जाकर अपनी कक्षा का प्रतिनिधित्व भी किया। स्कूल में मिलने वाले समर्थन से वह सफलता प्राप्त कर रही है। हालाँकि उसकी पुनर्वास सम्बन्धी अपनी विशिष्ट आवश्यकताएँ हैं और उसे स्कूल के समय के बाद नियमित रूप से व्यावसायिक और फ़िज़ियोथेरेपी सत्रों में भाग लेना पड़ता है।

छह साल का सुमन्त एक बढ़ई का बेटा है। वह तीन साल का था जब उसकी माँ को स्तन कैंसर हुआ था। माँ को स्तन का ऑपरेशन करवाना पड़ा था। उसकी माँ कैंसर से बच गईं । परिवार की अल्प आय माँ के इलाज में खर्च हो जाती थी। जब वह चार साल का था तो शारीरिक विकलांगता वाले उसके पिता को स्ट्रोक हुआ। इसका असर उनकी याददाश्त पर पड़ा तथा वे और कमज़ोर हो गए । इस वजह से उन्हें किसी भी दिहाड़ी काम के योग्य नहीं माना गया। सुमन्त अब ख़ुशी-ख़ुशी एक सरकारी स्कूल में एलकेजी में पढ़ने जाता है और कहता है कि उसकी शिक्षिका दयालु हैं। वे उसकी पारिवारिक स्थिति को समझती हैं। सुमन्त भाग्यशाली है कि उसे उनका समर्थन मिल रहा है।

इन सभी कहानियों में वैसे यह बात स्पष्ट रूप से तो नहीं कही गई है लेकिन हम देख सकते हैं कि वहाँ एक सहयोगी टीम है जिसमें बच्चे, शिक्षक और माता-पिता मिलकर काम कर रहे हैं। इनमें से हर एक माता-पिता ने बताया कि शिक्षक उनके सरोकारों पर बड़ी गर्मजोशी और तत्परता के साथ उनसे बातें करते हैं। साथ ही वे विकास के चरण के अनुसार मुद्दों पर सलाह देने में भी बहुत सक्षम हैं। ये शिक्षक माता-पिता की बातों को सुन रहे थे और बड़े आश्वस्त भाव से उन्हें जवाब दे रहे थे।

सफलता की हर कहानी के साथ ही संघर्ष और निराशा की कहानी भी है। निशा की कहानी एक ऐसा उदाहरण है जहाँ स्कूल का समावेशन विफल रहा। हाल ही में पता चला कि छह साल की निशा को स्वलीनता (ऑटिज़्म) है। उसे एक महँगे निजी स्कूल में भर्ती कराया गया था जिसमें समावेशी शिक्षा अभ्यास में थी। स्कूल उसकी व्यक्तिगत ज़रूरतों को सँभालने में असमर्थ था और चाहता था कि वह स्कूल छोड़ दे, बावजूद इसके कि उसे अपने माता-पिता और दादा-दादी से बहुत समर्थन मिलता था। अफ़सोस की बात है कि ऐसे स्कूल उन बच्चों की चुनौती का सामना करने के लिए तैयार नहीं हैं जिन्हें उच्च-समर्थन की ज़रूरत है।

सेवापूर्व शिक्षक-शिक्षा में समावेशन और आत्म-चिन्तन

क्या शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रमों में शिक्षक के चिन्तन और शोध को शामिल करने की आवश्यकता है? क्या हम खुले दिलो-दिमाग़ के साथ उन स्थितियों का प्रबन्धन करने के लिए तैयार हैं जिनका वर्णन शिक्षा की पाठ्यपुस्तक में कभी नहीं किया गया?

शिक्षक-शिक्षा का पारम्परिक दृष्टिकोण सेवापूर्व शिक्षक को उस विषयवस्तु का पूरा ज्ञान देता है जिसे उसे बाद में अपने विद्यार्थियों को देना है। तथापि पश्चिम में आजकल इसका उद्देश्य शिक्षकों को अधिगम के सुगमकर्ता के रूप में कार्य

करने के लिए तैयार करना है। इसे *रचनावादी दृष्टिकोण* के रूप में जाना जाता है। इसमें शिक्षक, शिक्षण करने की बजाय मार्गदर्शन के माध्यम से बच्चे को सीखने में समर्थन या *सहारा* प्रदान करते हैं (सेलर और स्क्रटिक, 1992)।

मचान बनाने यानी सहारा देने का उपयोग विभेदित कक्षा में भी किया जाता है जहाँ शिक्षार्थी विभिन्न स्तरों और क्षमताओं वाले होते हैं, लेकिन एक समान पाठ्यक्रम की पढ़ाई करते हैं। सेवापूर्व शिक्षक उन पाठयोजनाओं, अनुदेशात्मक रणनीतियों और मूल्यांकन की तकनीकों को विकसित करना सीखते हैं जो एक समावेशी कक्षा की विविध शिक्षण रूपरेखाओं पर विचार करें।

फिर भी एक सेवापूर्व प्रशिक्षु शिक्षक या किसी भी शिक्षक से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह ज्ञान की उन इकाइयों को सीखने में सुगमीकरण कर पाएगा जो उसकी विश्वास प्रणाली में मौजूद नहीं हैं (बाकर एवं अन्य, 2002)। हृदय का अधिगम पाठ्यपुस्तकों के विषय से परे है। दृष्टिकोणों, विचारों, विश्वासों और मूल्यों की खोज इसके दायरे में आती है। अपनी जागरूकता से परे प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार व समुदाय के मानदण्डों और सांस्कृतिक व धार्मिक मूल्यों से भी प्रभावित होता है। अकसर इन मूल्यों और आदर्शों में टकराव होता है जो चिन्तन की अमूल्य प्रक्रिया को उजागर करता है। दृश्य-कला, संगीत और नाटक का उपयोग करते हुए एक बहु-सांस्कृतिक समूह में सहयोग करने की चुनौतियों से दोस्तों और सहपाठियों के बीच अन्तर व समानताओं तथा खुशियों व संघर्षों पर चिन्तन विकसित हो सकता है। और इस तरह युवा सेवापूर्व शिक्षकों को दृश्य और अदृश्य विविधता की सराहना और सम्मान करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

इसके अलावा यह कहना उचित होगा कि सामान्य कक्षा में विकलांग विद्यार्थियों को शिक्षित करने के बारे में शिक्षकों के विश्वास और दृष्टिकोण से सम्बन्धित शोध का बहुत महत्व है। इससे न केवल शिक्षक की तैयारी से सम्बन्धित कार्यक्रमों को लाभ पहुँचेगा, बल्कि स्कूल भी वर्तमान चुनौतियों की समझ से लाभान्वित होंगे और सेवापूर्व और सेवाकालीन शिक्षा में सुधार के तरीक़े खोजेंगे। वास्तव में सेवापूर्व प्रशिक्षण शिक्षकों की चिन्ताओं को दूर करने के लिए सबसे अच्छा समय है। इसलिए इसे बढ़ावा दिया जाता है और सम्भवत: इससे विकलांग विद्यार्थियों के बारे में शिक्षकों के नकारात्मक दृष्टिकोण और समावेशी शिक्षा के बारे में उनकी धारणाओं को संशोधित किया जा सकता है। विकलांग विद्यार्थियों के साथ काम करने, स्व-अधिवक्ताओं के साथ सहयोग करने या सामाजिक सम्पर्क के माध्यम से विशेष आवश्यकताओं वाले व्यक्तियों को जानने के लिए प्रोत्साहित करने वाले नवाचारी कार्यक्रम विविधता के प्रति सेवापूर्व शिक्षकों के रवैये को कोमल करने और उनके साथ सहूलियत से काम करने में मदद करते हैं।

विद्यार्थियों की आत्म-प्रभावकारिता (Self-efficacy)

ऊपर उल्लिखित सफलता की कहानियों के अध्ययन में हमने देखा कि पहले चार बच्चों को स्कूल में अपने शिक्षकों का समर्थन और प्रोत्साहन मिलता है। प्रत्येक बच्चे ने यह महसूस किया कि उसके शिक्षक ने उसे कक्षा के एक महत्वपूर्ण सदस्य के रूप में स्वीकार किया है। ये बच्चे इस आश्वासन के साथ बड़े और परिपक्व हो रहे हैं कि वे अपने शिक्षक के मार्गदर्शन में सफल होंगे। इनमें से प्रत्येक बच्चा इस दुनिया में एक विद्यार्थी के रूप में आत्म-प्रभावकारिता की भावना प्राप्त कर रहा है। लेकिन पाँचवें बच्चे की कहानी से पता चलता है कि स्थिति इतनी सरल नहीं है और इससे यह बात उजागर होती है कि शिक्षकों को उन बच्चों के समावेशन पर भी विचार करना चाहिए जिन्हें स्वास्थ्य और पुनर्वास सम्बन्धी सहायता की आवश्यकता होती है। होम-स्कूलिंग एक विकल्प नहीं हो सकता है क्योंकि इससे बच्चे को अपने हमउम्र साथियों का साथ नहीं मिल पाएगा।

आत्म-प्रभावकारिता आत्म-सम्मान से काफ़ी अलग है। यह अन्तर इस प्रकार है- सफल होने की अपनी क्षमता पर विश्वास और ख़ुद के बारे में अपना निर्णय। आत्म-प्रभावकारिता एक चालक की तरह काम करती है व सफल होने के लिए प्रोत्साहित करती है और अन्ततः स्वयं के बारे में व्यक्ति की राय को बदल देती है।

विशिष्ट परिस्थितियों में स्वयं की प्रभावशीलता में व्यक्ति का विश्वास ही आत्म-प्रभावकारिता की परिभाषा है। यदि हम किसी कार्य को करने की अपनी क्षमता पर विश्वास करते हैं तो हम उसे करने के लिए अधिक प्रेरित होते हैं। इसके अलावा इस बात की सम्भावना अधिक है कि हम उन क्षेत्रों में प्रदर्शन करने वाले मॉडल की नक़ल करें जिनमें हमारी आत्म-प्रभावकारिता की भावना अधिक है। आत्म-प्रभावकारिता आनुवांशिकी पर आधारित न होकर, विचार का एक सीखा हुआ पैटर्न है। नक़ल करने की क्षमता बचपन में शुरू होती है और जीवन भर चलती है। बण्डुरा के अनुसार, रोल मॉडल के सम्पर्क और सफलता के अपने स्वयं के सकारात्मक अनुभव के माध्यम से बच्चों में आत्म-प्रभावकारिता विकसित होती है (बण्डुरा 1977)। इसलिए उच्च आत्म-सम्मान वाले आत्मविश्वासी शिक्षक जिनमें अपनी प्रभावशीलता को विकसित करने और उसमें विश्वास करने की क्षमता हो, वे ऐसे आत्मविश्वासी विद्यार्थियों का विकास कर सकते हैं जो अपनी प्रभावशीलता में भी विश्वास करें (लॉ और अन्य 2010)।

आत्म-प्रभावकारिता शोध उन हस्तक्षेपों के औचित्य को भी दर्शाता है जो विद्यार्थियों में आत्म-सम्मान, आत्मविश्वास और ख़ुशहाली को बढ़ावा देते हैं। आत्मसम्मान वह प्रवृत्ति है जो व्यक्ति स्वयं के प्रति रखता है। हालाँकि आत्म-सम्मान अपेक्षाकृत स्थिर है किन्तु सफलता और विफलता इसे प्रभावित कर सकती है। एक वयस्क की हैसियत से अपने अनुभवों पर चिन्तन करते हुए हमें पता चलता है कि हम अपनी उपलब्धियों के बारे में अच्छा महसूस करते हैं और अपनी असफलताओं से आहत होते हैं। एक बच्चे के लिए बहिष्कृत, निन्दित या उपेक्षित होना या दण्डित किया जाना एक बहुत ही दर्दनाक मनोवैज्ञानिक अनुभव है जो आत्म-सम्मान को कम कर सकता है।

निष्कर्ष

समावेशी शिक्षा का अभ्यास करने के लिए आवश्यक आत्म-प्रभावकारिता में प्रशिक्षु शिक्षकों को तैयार करने में सेवापूर्व शिक्षक-शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। जब अनुभवी शिक्षक-प्रशिक्षकों और अभ्यासकर्ताओं के मार्गदर्शन में, रचनात्मक कलाओं का उपयोग करते हुए, समर्थन मूल्य और विश्वास प्रणाली की खोज की जाती है तो गहरी सोच और चिन्तन का रास्ता खुलता है। इसके अलावा स्व-अधिवक्ताओं, विशेष रूप से विकलांग व्यक्तियों के साथ बातचीत भी सम्बन्धों और दोस्ती का निर्माण करती है जो भय और अज्ञानता पर आधारित अभिवृत्तिक अवरोधों को ख़त्म करती है। आत्म-चिन्तन में संलग्न होने से जाँच-पड़ताल का वह दृष्टिकोण विकसित होता है जो समावेशी अभ्यासों के लिए आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इस तरह के समावेशी अभ्यास के लिए शिक्षक को अधिगम का सुगमकर्ता, एक प्रेरक और एक पुनर्वासन परामर्शदाता बनना होगा और इसलिए सेवापूर्व शिक्षक पाठ्यक्रम के लिए विषय ज्ञान से परे जाकर आत्म-प्रभावकारिता प्रशिक्षण पर विचार करना ज़रूरी होगा। इसमें सन्देह नहीं कि नियमित कक्षाओं में उच्च समर्थन की आवश्यकता वाले बच्चों को शामिल करने के बारे में चिन्तन प्रक्रिया के माध्यम से विचार किया जाना चाहिए जो आत्म-प्रभावकारिता की ओर ले जाता है। बण्डुरा के काम का उल्लेख करते हुए यह कहा जा सकता है कि आत्म-प्रभावकारिता की मज़बूत भावना वाले लोग जिन गतिविधियों में भाग लेते हैं, उनमें गहरी रुचि और प्रतिबद्धता विकसित करते हैं; अतः वे चुनौतीपूर्ण समस्याओं से अभिभूत नहीं होते और जल्दी ही अपनी असफलताओं से उबरने लगते हैं। व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तन लाने के लिए आत्म-प्रभावकारिता सबसे महत्वपूर्ण शर्त है।

References

Ainscow, M.Booth, T. and Dyson, A. (2006). *Improving Schools, Developing Inclusion*, First Edition. London: Routledge.

Bakker, J.P., Aloia, G.F. and Aloia, S.F. (2002). *Preparing Teachers for All Students* in F.E. Obiakor, P.A. Grant and E.A.Dooley (eds). Educating All Learners: Refocusing on the Comprehensive Support Model, Springfield, IL: Charles C. Thomas.

Bandura, A. (1977). *Self- efficacy: toward a unifying theory of behavioural change*. Psychol Rev 84:191-215.

Burnaford, G., Fischer, J. and Hobson, D. (2001) *Teachers Doing Research, The Power of Action through Inquiry*, Second Edition, New Jersey: Lawrence Erlbaum Associates Inc.

Eisner E.W. (1985). *The Educational Imagination: On the Design and Evaluation of School Programs* (4th Edition) New York: Macmillan.

Forlin C, and Ming-Gon J.L. Ed. (2008) *Reform, Inclusion and Teacher Education*, Routledge.

Fuchs W.W. *Examining Teachers' Perceived Barriers Associated with Inclusion*, SRATE Journal Winter 2009-2010, Vol. 19, 1. https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ948685.pdf

Law A. Halkiopoulos C. and Brayan-Zaykov C. (2010). *Psychology*, Malaysia: Pearson Education Ltd.

Sailor, W. and Skrtic, T.M. (1996). *School/Community Partnerships and Educational Reform*, Remedial and Special Education, 17.

Schon, D. (1983). *The Reflective Practitioner*, New York: Basic Books.

Snyder C.R., Lopez S.J., and Pedrotti J.T. (2011) *Positive Psychology*, Second Edition, Sage Publications India Pvt Ltd.

UNESCO (2017) *A Guide for Ensuring Inclusion and Equity in Education*. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000248254/PDF/248254eng.pdf.multi.nameddest=305_17%20Ensuring%20Inclusion_int_21_28_en.indd%3A.178893%3A656



अनुराधा नायडू ने 0-6 वर्ष के आयु वर्ग में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ एक प्रारम्भिक हस्तक्षेपकर्ता के रूप में हांगकांग में काम किया। यह कार्य उन्होंने एक प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्र के तत्वावधान में किया जिसे ग़ैर-चीनी भाषी आबादी की सेवा करने वाले हांगकांग सरकार के कार्यक्रम द्वारा अनुदान प्राप्त था। वे 20 साल पहले चेन्नई के विद्या सागर में एक विशेष शिक्षिका के रूप में प्रशिक्षित हुईं और वहाँ उनका परिचय अन्तर्विषयक दृष्टिकोण से हुआ। उनके अभ्यास इसी बात को प्रतिबिम्बित करते हैं क्योंकि वे लगातार अपने विद्यार्थियों के लिए अधिगम की एक मज़ेदार प्रक्रिया में थेरेपी, शिक्षा और वैकल्पिक सम्प्रेषण को एक साथ बुनने का प्रयास करती हैं। वे अंशकालिक रूप से विद्यासागर के बीएड कोर्स में समावेशी शिक्षा तथा महिला क्रिश्चियन कॉलेज, चेन्नई के मनोविज्ञान विभाग में मनोविज्ञान पढ़ाती हैं। उनसे anuradha.naidu@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल